संवाद में इस बार हम तीन भिन्न तरह की टिप्पणियां छाप रहे हैं । वेद कुमारी यहां शिक्षा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों में द्वैत को उठाकर शिक्षा की समग्रता की मांग उठा रही हैं । कमलेश चन्द्र जोशी ने बच्चों के खिलौनों की दुनिया में आये परिवर्तन को परिलक्षित किया है, साथ ही पंरपरागत खिलौनों के सृजनात्मक पहलुओं को रेखांकित किया है । जबकि जयपाल मसूरी में सक्रिय अपनी शैक्षिक संस्था 'सिद्ध' के कुछ अनुभवों को 'विमर्श' के पाठकों के साथ बांटना चाहते हैं ।

शिक्षा : सिद्धांत और व्यवहार

❑ डॉ. वेद कुमारी

बचपन से पढ़ते सुनते आ रहे हैं कि मनुष्य के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है । शिक्षा से ही मनुष्य पशु से भिन्न होता है । बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है । आदि आदि ।

व्यक्ति के विकास के लिये शिक्षा की अनिवार्यता तो निर्विवाद है । पर सर्वांगीण विकास से क्या अभिप्राय है, और उसके लिए शिक्षा कैसी होनी चाहिये- इस विषय में मतभेद शुरू हो जाते हैं । शिक्षा का संचालन जिस समाज अथवा शासन के हाथ में होता है, उसी के जीवन-दर्शन और उद्देश्य के अनुसार शिक्षा का स्वरूप निर्धारित कर दिया जाता है । शरीर की शक्तिमत्ता को महत्वपूर्ण मानने वाले स्पार्टा में शिक्षा के उद्देश्य भिन्न थे जबकि सत्य की खोज को जीवन का लक्ष्य मानने वाले एथेन्स के लिए विचार प्रधान शिक्षा पद्धति को स्वीकार किया गया था । भारत में शरीर, मन, बुद्धि और चरित्र को सशक्त करने वाली गुरूकुलीय शिक्षा व्यवस्था उचित मानी गई थी, क्योंकि तत्कालीन समाज शास्त्रियों ने पुरूषार्थ चतुष्ठय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन को लक्ष्य घोषित किया था। ब्रिटिश शासन ने अपने साम्राज्य के विस्तार और स्थायित्व के लिये स्थानीय परिवेश से अलग करने वाली और आचार-विचार में शासक की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने वाली शिक्षा का प्रचलन किया था। अर्थात् जो हमारा लक्ष्य होगा, शिक्षा उसी के अनुरूप आकार ग्रहण करेगी।

पर स्वतंत्र भारत में विडम्बना है कि लक्ष्य की घोषणा तो पूर्व की है, और शिक्षा की दिशा पश्चिम की है । हमारे स्वाधीनता आन्दोलन के हर जननायक ने पहला प्रहार शिक्षा के विदेशी स्वरूप और विदेशी मानसिकता को बढ़ाने वाले दुष्परिणामों पर ही किया था, और उसी के विकल्प स्वरूप देश की आवश्यकता और जीवन दर्शन के अनुरूप उस पराधीन भारत में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति को पुनरूज्जीवित किया, गांधीजी ने बुनियादी तालीम के रूप में कर्म-श्रम और ज्ञान का समन्वय करने वाले बुनियादी तालीम विद्यापीठ की स्थापना की; रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कला-सौन्दर्य की साधना से आनन्द को पाने वाले विश्व भारती शान्ति निकेतन को जन्म दिया और महर्षि अरविन्द ने आध्यात्म की दिशा से मनुष्य की श्रेष्ठतम स्थिति को पाने के लिए पाण्डिचेरी आश्रम के स्वप्न को साकार किया।

पराधीन भारत में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति को पुनरूज्जीवित किया, गांधीजी ने बुनियादी तालीम के रूप में कर्म–श्रम और ज्ञान का समन्वय करने वाले बुनियादी तालीम विद्यापीठ की स्थापना की; रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कला–सौन्दर्य की साधना से आनन्द को पाने वाले विश्व भारती शान्ति निकेतन को जन्म दिया और महर्षि अरविन्द ने आध्यात्म की दिशा से मनुष्य की श्रेष्ठतम स्थिति को पाने के लिए पाण्डिचेरी आश्रम के स्वप्न को साकार किया।

और यह संयोग नहीं है कि ये चारों केन्द्र अपने अपने तरीके से देश की अस्मिता की अभिव्यक्ति के माध्यम भी बनें और स्वाधीनता के संघर्ष-स्वर को मुखर बनाने के आधार भी । इसी कारण इन चारों केन्द्रों में से किसी एक से भी जुड़े व्यक्ति अनायास ही सामाजिक दायित्वों के प्रति सचेत नागरिक और देशभक्त बनें । इसके लिये अलग से कुछ सिखाने की जरूरत नहीं पड़ीं क्योंकि वस्तुत: सही शिक्षण का यह स्वाभाविक परिणाम होता है कि व्यक्ति में उचित-अनुचित का विवेक भी जागे, और उचित के पक्ष में खड़े होने का साहस भी ।

किन्तु स्वाधीनता के बाद के इन 50 वर्षों में इस देश के कर्णधारों ने उपर्युक्त चारों में से किसी भी शिक्षण को राष्ट्रीय पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं किया । स्वीकार किया उसी विदेशी पद्धति

को, जिसे विभिन्न मंचों से कोसते तो आज भी हैं पर हटाने की हिम्मत अभी तक नहीं जुटा पाये हैं । फलत: आज की शिक्षा हमारी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर रही है, बल्कि विदेशी शासन के द्वारा डाले गये बीजों को ही पुष्पित-पल्लवित कर रही है ।

यही कारण है कि घोषणायें तो की जाती हैं शिक्षा के द्वारा राष्ट्र-निर्माण की, समाज के आमूलचूल परिवर्तन की, पर हो यह रहा है कि सरकारी नौकरी की तलाश में भटकते हताश-कुण्ठित युवकों की फौज बढ़ती जा रही है । कहा तो यह जाता है कि बालक के विकास के लिये, देश की उन्नति के लिए शिक्षा अनिवार्य है, पर विकसित हो रही है सिर्फ पैसा कमाने की मनोवृत्ति, उसके लिए भले ही देश का सौदा करना पड़े । यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों में देश में हुये घोटालों के कर्णधार प्राय: तथाकथित शिक्षित और उच्चशिक्षित व्यक्ति ही रहे हैं । यह सिर्फ संयोग नहीं, अपितु आज की तथाकथित शिक्षा का अनिवार्य परिणाम है क्योंकि हमारी अब तक की समस्त शिक्षा नीतियों के निर्धारण में, केन्द्र बिन्दु रहा है 'रोजगार' । यानि शिक्षा का मतलब है ''कमाने की क्षमता'' पाना । चाहे 10+2 का संशोधन हो, या व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार, चाहे टेक्नीकल ट्रेनिंग की मांग हो या पब्लिक स्कूलों को बढ़ावा देना - सबका उद्देश्य है बच्चों को - व्यक्तियों को रोजगार योग्य बनाना । अर्थात् आज जीवन का व्यावहारिक लक्ष्य है मात्र पैसा कमाना - अधिकाधिक पैसा कमाकर अधिकतम सुविधायें जुटाना ।

इसलिये आज आम तौर पर हर व्यक्ति की शिक्षा से भी यही अपेक्षा है । और अपनी अपेक्षा की पूर्ति के लिये नीति-अनीति, लाभ-हानि, उचित-अनुचित की सीमाओं का सवाल ही समाप्त हो गया है ।

इस संबंध में कितनी विसंगति है हमारे कहने और चाहने में कि देखकर हैरान रह जाना पड़ता है । हम कहते तो हैं कि शिक्षा से चरित्र-निर्माण होना चाहिये, पर शिक्षित व्यक्ति चाहता और जरूरत पड़ने पर करता भी -यह है कि रिश्वत देकर भी नौकरी मिल जाये। विशेष पाठ्यक्रमों वाली शिक्षा में प्रवेश के लिये भी हर आड़ा-टेढ़ा तरीका अपनाया जाता है ।

हम कहते तो यह हैं कि शिक्षा से इस देश-समाज-को स्वर्ग बनाया जाना चाहिये, पर चाहते-करते यह हैं कि स्वर्ग सिर्फ मेरे घर में उतरे । इसके लिए भले ही पड़ौसी को नरक में क्यों न धकेलना पड़े । जब शिक्षण के बीज ही सड़ गये हों, तो जीवन में बहार कैसे आयेगी, समाज में सुख चैन क्यों कर संभव होगा ? जब शिक्षा का समाज से कोई नाता न हो, पास्परिक सहकार का आधार न हो, तो सामूहिक भावना या सामाजिक हित की दृष्टि कैसे बनेगी ? जब जिन्दगी का कोई ऊंचा सपना न हो, विश्व बन्धुत्व का अहसास न हो, तो व्यक्ति क्षुद्रता से निकलेगा क्यों कर ? घटिया स्वार्थों की जगह कदमों में ऊंचाई कैसे आयेगी ?

अत: आज पहली जरूरत तो यह है कि हम सचमुच एक सही शिक्षा की कामना तो करें; हमारी वाणी और इच्छा में तो एकरूपता हो, तभी कर्म के शिक्षण के सही होने की संभावना का द्वारा खुलेगा । हमारे मन की क्षुद्रता तो नष्ट हो, पर उसी के लिये तो सही शिक्षण अपेक्षित है । पर पहले यह तो सुनिश्चित हो कि हम सचमुच शिक्षण के द्वारा एक सुन्दर-सशक्त तन-मन और मानवीय गुणों से संपन्न मनुष्य बनाना चाहते हैं, ताकि हम एक सम्पन्न-सुखद-शुभ समाज निर्माण कर सकें । पहले बुद्धिपूर्वक भी, हृदयपूर्वक भी, यह हमारा लक्ष्य बने, तभी तो उसकी पूर्ति में सक्षम शिक्षण-विधि की तलाश की जा सकती है ।◆